जैन-शासन का ध्वज

(अर्हन्-नित्यथ जैनशासनरत:)

—हनुमन्नाटक १।३

डॉ० जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल

(एम. ए. हिन्दी, संस्कृत, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति आदि, एल-एल. बी., पी-एच. डी.)

प्रकाशक :

वीर-निर्वाण भारती

मेरठ (उ. प्र.)

मूल्य : एक रुपया

[वी. नि. सं. २४९९

द्रव्यप्रदाता :

श्रीमती सौ. निर्मला जैन

पत्नी श्री जितेन्द्र जैन (सुपुत्ररत्न स्व. श्री धनीचन्द जैन, मेरठ)

प्राप्तिस्थान :

राजेन्द्रकुमार जैन,

६६, तीरगरान स्ट्रीट, मेरठ शहर (उ. प्र०)

[तीर्थङ्कर महावीर २५००वाँ निर्वाण महोत्सव निमित्त]

मुद्रक : [illegible] प्रेस, मेरठ।

ऐतिहासिक निर्णय

विश्वधर्म प्रेरक मुनि श्री विद्यानन्द जी, मुनि श्री कान्तिसागर जी, विश्वधर्म-सम्मेलन संयोजक मुनि सुशीलकुमार जी, तथा अणुव्रत प्रचारक मुनि महेन्द्र जी—चारों सम्प्रदायों के मुनिराजों ने मार्च १९७१ के प्रथम सप्ताह में बैदवाड़ा स्थित दिगम्बर जैन धर्मशाला, दिल्ली में 'जैन-शासन' के ध्वज के संबंध में औपचारिक विचार-विनिमय के साथ पांच रंग—१—अरुणाभ, २—पीताभ, ३—धवल, ४—हरिताभ तथा ५—नीलाभ—के ध्वज का सर्वसम्मति से अनुमोदन किया।

प्रस्तुत पुस्तिका में जैन शासन के झण्डे का संक्षिप्त विवरण देते हुए उसके वास्तविक स्वरूप का सैद्धान्तिक निरूपण किया गया है। चतुर्गति का प्रतीक स्वस्तिक बहुत प्राचीन है। श्रमण-संस्कृति में इसकी विशेष मान्यता है। इसीलिए इसे ध्वज के मध्य में स्थान दिया गया है। जैन समाज में ध्वज की विभिन्न परिपाटियाँ प्रचलित हैं। एक सार्वभौम ध्वज को अपनाकर उसे समस्त जैन समाज में प्रचलित करना चाहिए। पंच-रंग का ध्वज पंच परमेष्ठी का प्रतीक होने से समस्त जैन समाज के लिए आदर्श का प्रतिनिधि बनेगा और सदैव प्रेरणा प्रदान करेगा। हमारी कामना है कि यह ध्वज सार्व-भौम रूप से जैन समाज में अपनाया जाकर सदैव चलता रहे। जैसे णमोकार मंत्र का समस्त समाज में एक रूप है, वैसी ही एकरूपता इस ध्वज को भी प्राप्त हो। जैन समाज इस ध्वज के नीचे संगठित होकर, जैन शासन की इस विजय-पताका को फहराता हुआ जिन-धर्म को सुदृढ़ बनावेगा।

इस लघु पुस्तिका में जैन शासन का ध्वज, उसका प्रारूप, उसका महत्त्व, स्वस्तिक प्रतीक का महत्त्व, ध्वजारोहण की विधि, ध्वजगीत, धर्मचक्र आदि का शास्त्रीय प्रमाण सहित विवरण प्रस्तुत किया है। २५००वें तीर्थङ्कर महावीर निर्वाणोत्सव के शुभ अवसर पर इस लघु पुस्तिका का प्रकाशन इस संबंध में प्रामाणिक जानकारी प्रदान करने हेतु किया है। आशा है जैन-समाज इसका उपयोग करके मेरे परिश्रम को सार्थक बनावेगा।

यह पाँच रंगों का ध्वज पंच परमेष्ठी का प्रतीक तो है ही, साथ ही इसे व्यवहार में पंच अणुव्रत एवं पंच महाव्रत का प्रतीक भी माना जा सकता है। अणुव्रत श्रावकों के लिए और महाव्रत श्रमणों के लिए होते हैं। धवल रंग अहिंसा का, अरुणाभ सत्य का, पीताभ अचौर्य का, हरिताभ ब्रह्मचर्य का तथा नीलाभ अपरिग्रह का द्योतक माना जा सकता है। यह संगति भी बहुत उपयुक्त प्रतीत होती है। पंच परमेष्ठियों में अर्हन्त और

पंच व्रतों में अहिंसा का विशेष महत्त्व एवं इसके केन्द्रीभूत होने के कारण धवल रंग को मध्य (केन्द्र) में स्थान दिया गया है और उसके मध्य में स्वस्तिक इसलिए रखा गया है कि वह चतुर्गति का प्रतीक है। चतुर्गति संसार में परिभ्रमण का कारण है। उससे ऊपर उठकर अर्हन्त को हृदय में तथा अहिंसा को आचरण में उतारकर ही हम निर्वाण को प्राप्त कर सकते हैं।

श्वेताम्बर मुनि श्री यशोविजय जी, साहू श्रेयांसप्रसाद, साहू शान्तिप्रसाद तथा श्री नेमीचन्द जैन, दिल्ली के ध्वज और स्वस्तिक चिन्ह संबंधी तथा अन्य सुझावों को हमने यथास्थान स्वीकार किया है।

प्रातःस्मरणीय भगवान् महावीर के ढाई हजारवें निर्वाणोत्सव के अवसर पर यह लघु पुस्तिका मैं समस्त भक्तों के करकमलों में समर्पित करता हूं।

—जयकिशनप्रसाद

१४-७-७३

झंडे का माहात्म्य

"झंडा सभी राष्ट्रों के लिए एक जरूरी चीज है। लाखों लोग इसके लिए मर चुके हैं; निस्सन्देह यह एक प्रकार की मूर्ति पूजा है, जिसमें बाधा डालना एक पाप होगा, क्योंकि झंडा एक आदर्श का प्रतिनिधित्व करता है।"

—महात्मा गांधी

जीवमात्र के लिए

'भिन्न भिन्न मत देखिए भेद दृष्टिनो एह।
एक तत्त्वनां मूल मां, व्याप्या मानो ते॥
तेह तत्त्वरूप वृक्षनो, 'आत्मधर्म' छे मूल।
स्वभाव नी सिद्धि करे, धर्म तेज अनुकूल॥'

—श्रीमद् राजचन्द्र जैन

△ संसार में जो भिन्न-भिन्न मत देखे जाते हैं, वह सब दृष्टि का भेद है। सब ही मत एक तत्त्व के मूल में व्याप्त हो रहे हैं। उस तत्त्वरूप वृक्ष का मूल है 'आत्मधर्म', जो आत्मस्वभाव की सिद्धि करता है; और वही धर्म प्राणियों के अनुकूल है। इससे स्पष्ट होता है कि आत्मधर्म ही विश्वधर्म है और विश्वधर्म ही आत्मधर्म है।

आचार्य कुन्दकुन्द का संवादिस्वर—

जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहणं।
केवलिजिणेहिं भणियं सद्दहमाणस्स सम्मत्तं॥

△ जितना चरित्र धारण किया जा सकता है उतना धारण करना चाहिए और जितना धारण नहीं किया जा सकता, उसका श्रद्धान करना चाहिए क्योंकि केवलज्ञानी तीर्थंकर वृषभदेव ने श्रद्धान करने वालों को सम्यग्दृष्टि बतलाया है।

△ अहिंसावाद भारतीय जीवन का मेरुदण्ड है तो अनेकान्तवाद श्रमण-संस्कृति का मानदण्ड। इन दोनों मानदण्डों के सहारे मनुष्य का मनोबल ऊँचे उठकर इष्टसिद्धि के सर्वोच्च शिखर के कलश तक पहुँच सकता है।

ध्वज और ध्वजारोहण-विधि

(अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी के सौजन्य से प्राप्त)

णमो अरहंताणं	अरहंतों को नमस्कार
णमो सिद्धाणं	सिद्धों को नमस्कार
णमो आइरियाणं	आचार्यों को नमस्कार
णमो उवज्झायाणं	उपाध्यायों को नमस्कार
णमो लोए सव्वसाहूणं	लोक में सर्वसाधुओं (श्रमण मुनियों) को नमस्कार

माहात्म्य

एसो पंच णमोक्कारो सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं॥

(यह पंच नमस्कार (मंत्र) सर्व पापों की निर्जरा करने वाला है और सर्वमंगलों में प्रथम, उत्तम मंगल है।)

जिणसासणस्स सारो चउदसपुव्वाण जो समुद्धारो।
जस्स मणे णमोकारो संसारो तस्स किं कुणई॥

(अपराजित महामन्त्र णमोकार 'जैन शासन' का सार है और चौदह पूर्व जिनागम का सम्यक्-समीचीन उद्धार है. ऐसे महामन्त्र णमोकार जिसके चित्त में सदा स्थित है, संसार-सागर उसका क्या बिगाड़ सकता है, अर्थात् कोई अनिष्ट नहीं कर सकता।)

अरहंतो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धिस्थिता।
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः ॥
श्री सिद्धांत सुपाठका मुनिवरा रत्नत्रया-राधकाः।
पंचैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु ते मंगलं ॥

(इन्द्रों द्वारा पूज्य भगवान् अरहंत, सिद्धि (अष्टगुण रूप सम्पन्नता) में स्थिति सिद्ध परमेष्ठि, जिनशासन के उन्नतिकारक आचार्य, सिद्धान्त के पाठक उपाध्याय और रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र) के धारक मुनिवर! साधु परमेष्ठी! प्रतिदिन तुम्हारे (हमारे भी) मंगल को करें।)

'अरुहा सिद्धायरिया उज्झाया साहु पंचपरमेट्ठी।
ते वि हु चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, मोक्षपाहुड़ ६।१०४

(अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पांच परमेष्ठी हैं। ये पाँचों परमेष्ठी भी जिस कारण आत्मा में स्थित हैं, वह कारण आत्मा ही मेरे लिए शरण हो।)

ते धण्णा जिणधम्मं जिणदिट्ठं सव्वदुक्खणासयरं।
पडिवण्णा दिढधिदिया विसुद्धमणसा णिरावेक्खा ॥

—भगवती आराधना

('जिन्होंने निर्मल मन से, निस्पृह होकर, धैर्य धारण कर सर्व दुःखों का अन्त करने वाला वृषभदेव और महावीर प्रतिपादित 'जिनधर्म' धारण किया है, वे पुरुष धन्य हैं।')

'विजया पंचवर्णाभा पंचवर्णमिदं ध्वजं ।'[1]

जैन-शासन का ध्वज पांच रंगों वाला होता है। इसमें क्रमश: समान अनुपात में अरुणाभ, पीताभ, श्वेताभ, हरिताभ और गहरा नीलाभ रंग आड़ी पट्टियों के रूप में रहता है। श्वेत पट्टी पर बीचों-बीच स्वस्तिक चिह्न स्वर्णिम रंग में अंकित होता है। स्वस्तिक का व्यास श्वेत पट्टी की चौड़ाई जितना होता है। इसलिए यह पट्टी अन्य रंगों की पट्टी से अधिक चौड़ी होती है।

पंचरंग पाँचों परमेष्ठी

स्थापत्य एवं मूर्तिकला के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'मानसार' (५वीं शती में रचित) में पाँचों परमेष्ठियों की प्रतिमाओं के पञ्चवर्णों का निरूपण किया गया है—

स्फटिक श्वेतरक्तं च पीतश्यामनिभं तथा।
एतत्पंचपरमेष्ठि पंचवर्णं यथाक्रमम्॥—अध्याय ५५

(पाँचों परमेष्ठियों की पांच प्रतिमाएँ यथाक्रम से इन वर्णों की होती हैं—१–स्फटिक (धवल), २–अरुणाभ, ३–पीताभ, ४–हरिताभ, ५–नीलाभ।)

ध्वजारोहण-विधि

प्रतिष्ठापाठ में ध्वजारोहण की विधि का निरूपण करते हुए ध्वज के महात्म्य का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

'कलशाद्दुच्छ्रिते हस्तं ध्वजे नीरोगता भवेत्।
द्विहस्तमुच्छ्रिते तस्मात्पुत्रावृद्धिर्जायते परा॥
त्रिहस्तं तस्य सम्पत्तिर्धान्यवृद्धिश्चतः करम्।
पञ्चहस्तं सुभिक्षं स्याद् राष्ट्रवृद्धिश्च जायते॥
अम्बरेण कृतो यास्याद् ध्वजः सम्यक् समन्ततः।
सोऽति लक्ष्मीप्रदो राज्ये यशःकीर्तिप्रतापदः॥
भूपाला बालगोपाल, ललनानां समृद्धिकृत्।
राज्ञां सुखार्थदायी च धान्यैश्वर्यजयावहः॥'—

—आचार्यकल्प आशाधर, प्रतिष्ठापाठ अ ५, श्लो. ७४–७६

△ मन्दिर के शिखर-कलशों से एक हाथ ऊँची ध्वजा आरोग्यता प्रदान करती है, दो हाथ ऊँची सुपुत्रादि सम्पत्ति को, तीन हाथ ऊँची धान्य सम्पत्ति को, चार हाथ ऊँची

१—आचार्य नेमिचन्द्र : प्रतिष्ठातिलक, ५।१०

राजा की वृद्धि को और पाँच हाथ ऊँची सुभिक्ष एवं राज्यवृद्धि को करने वाली है। वस्त्र से बनी तथा चारों ओर भलीभांति फहराती हुई ध्वजा अति लक्ष्मीप्रद तथा राज्य में यश, कीर्ति एवं प्रताप को विकीर्ण करने वाली है। यह ध्वजा कृषक, बालक, गोरक्षक, सु-नारी की समृद्धि करने वाली और शासक के लिए धान्य ऐश्वर्यादि सुखदायिनी एवं विजय प्रदायिनी है।

निम्नांकित मंत्र का पाठ करके ध्वजारोहण किया जाता है—

'ओं नमो अरहंताणं स्वस्तिभद्रं भवतु सर्वलोकस्य शान्तिर्भवतु स्वाहा।'

ध्वजारोहण करने वाला कहता है—

'श्रीमज्जिनस्य जगदीश्वरताध्वजस्य ।
मोनध्वजादि रिपुजाल जयध्वजस्य ॥
तल्यामदर्शनजनागमनध्वजस्य ।
आरोपणं विधिवदविदधे ध्वजस्य ॥'—

(जो ध्वजा वृषभदेव महावीर आदि २४ तीर्थंकर और जैन-शासन की जगदीश्वरता, कामदेव शत्रु समूह पर विजय तथा जिनबिम्ब के दर्शनार्थियों के आवाहन आदि की प्रतीक है, मैं ऐसी ध्वजा का विधिवत् आरोहण करता हूँ।)

इति ध्वजारोहविधिं सभेरी संताडनं यो विदधाति भव्यः।
स मोक्षलक्ष्मीनयनोत्पलानां नक्षत्रनेमित्वमुपैति नूनम् ॥'

(भेरी वादित्र के घोषपूर्वक जो भव्य पुरुष ध्वजारोहण विधि को सम्पन्न करता-कराता है, वह मोक्षलक्ष्मी के नेत्रों के तारापन अर्थात् प्रिय-भाव को अवश्य प्राप्त करता है, उसे मुक्ति अवश्य प्राप्त होती है।)

जैन-शासन में ध्वज की प्रथा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। जैन-शासन के ध्वज के नीचे सभी साधर्मी बन्धु समान है, न कोई छोटा है न बड़ा। श्रमण-श्रमणा और श्रावक-श्राविका चतुः संघ एक ही जैन-शासन की छत्र-छाया में स्थित है।

'शिवमस्तु सर्वजगतां परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषाः प्रयान्तु नाशं तिष्ठतु जिनशासनं सुचिरम् ॥'—

—आचार्य नेमिचन्द्र, प्रतिष्ठातिलक २।१३

(सर्व लोकों का कल्याण हो, जीवमात्र पर-हित में तत्पर रहें। दोषों का नाश हो, जैन-शासन चिरकाल तक पृथिवी पर प्रवर्तित रहे।)

भारत देश महान

आदि वृषभ के पुत्र भरत का भारत देश महान।
वृषभदेव से महावीर तक करें सुमंगल गान॥
पंच रंग, पाँचों परमेष्ठी, युग को दें आशीष।
विश्व-शान्ति के लिए झुकाएं पावन ध्वज को शीष।
'जिन' की ध्वनि, जैन की संस्कृति, अग-मग को वरदान॥
भारत देश महान......

—सुकवि मिश्रीलाल

ध्वज के प्रति निष्ठा और प्रतिज्ञा

'मैं जैन-शासन के प्रति और सार्वभौम महामन्त्र णमोकार के प्रति तथा अनेकान्तवाद और अहिंसावाद के प्रति भी मन, वचन, काय से निष्ठा रखने की प्रतिज्ञा करता हूं।'

यह शिलांकित प्राचीनतम उपलब्ध स्वस्तिक प्रथम शताब्दी का है। यह मथुरा के पुरातत्व संग्रहालय में स्थित तीर्थंकर पार्श्वनाथ की मूर्ति पर बने हुए सात सर्प-फणों में से एक पर अंकित है।

(पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा के सौजन्य से प्राप्त)

प्रतीक चिह्न स्वस्तिक

"स्वस्तिक भी एक रहस्यमय प्रतीक है। इसका उद्भव भारतीय संस्कृति से भी पूर्व हुआ था। ऋग्वेद सबसे प्राचीन है। उसमें जहां तहां स्वस्तिक का विवरण है। विद्वानों की धारणा है कि स्वस्तिक की उत्पत्ति ऋग्वेद से भी प्राचीन है।"

"स्वस्तिक शब्द 'सु-अस' धातु से बना है। 'सु' का अर्थ है सुन्दर-मंगल और 'अस्' अर्थात् अस्तित्व या उपस्थिति। तीनों लोकों, तीनों कालों तथा प्रत्येक वस्तु में जो विद्यमान हो, वही सुन्दर-मंगल-उपस्थिति का स्वरूप है—यही भावना है स्वस्तिक की।"[1]

चतुर्गति नामांकन और उन्नति-दर्शक भावपूर्ण प्रतीक

जैन-शासन स्वस्ति-कल्याणमय है। इसका प्रतीक स्वस्तिक भी तदनुरूप है। स्वस्तिक चिह्न अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। स्वस्तिक का भाव है—स्वस्ति करोतीति स्वस्तिकः अर्थात् जो स्वस्ति-कल्याण को करे। प्रत्येक शुभ कार्य में स्वस्तिक-दर्शन का महत्त्व है। यह संसार से मुक्ति तक की सभी अवस्थाओं की ओर प्राणियों का ध्यान आकर्षित करता है। देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारक ये चार गतियां हैं, जिन्हें स्वस्तिक के चारों कोण इंगित करते हैं। तीन बिन्दु मोक्षमार्ग के मार्गभूत सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को लक्षित करते हैं और अर्धचन्द्र सिद्धशिला का प्रतीक है। इस प्रकार जैन-शासन का फलित रूप स्वस्तिक के द्वारा मूर्त रूप में सामने आ जाता है और हमें संसार से उठकर मोक्ष के प्रति उद्यमशील होने का पाठ पढ़ाता है। अतः इसे स्वस्तिक नाम दिया गया है। यह सर्वथा मंगलकारी है। स्वस्तिक के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि—

'नर-सुर-तिर्यङ्ङ नारक योनिषु परिभ्रमति जीव लोकोऽयम्।
कुशला स्वस्तिक रचनेतीव निदर्शयति धीराणाम्॥'

—यह जीव इस लोक में मनुष्य, देव, तिर्यञ्च तथा नारक योनियां (चतुर्गतिक) में परिभ्रमण करता रहता है, मानो इसी को स्वस्तिक की कुशल रचना व्यक्त करती है।'

नित्य शुभ मंगल

स्वस्तिक चिह्न जैन-धर्म का 'आदि चिह्न' है और उनके द्वारा प्रतिदिन इसका शुभ कार्यों में प्रयोग किया जाता है।[2] यह चिह्न जैन-धर्म के ग्रन्थों एवं मन्दिरों में अधिक दिखाई पड़ता है। जैनियों की अक्षत-पूजा में यह चिह्न आज भी बनाया जाता है।

१—कादम्बिनी—श्री अनवर आगेवान, नवम्बर १९६६, पृ० ६३

२—उड़ीसा में जैन-धर्म, डॉ० लक्ष्मीनारायण साहू, पृ० ६

'वेदिकाग्रे ततः कुर्यात्स्वस्तिकं स्थण्डिलान्वितम् ।
पूर्वापरदिशो रम्यं तण्डुल पुञ्जकद्वयम् ॥—

—सोमसेन ११।१६

(वेदी के अग्रभाग में चौकोन चबूतरे का आकार बनाकर उस पर स्वस्तिक चिह्न अंकित करें। पूर्व दिशा में एक और पश्चिम दिशा में दूसरा ऐसे दो चावलों के पुञ्ज (ढेर) रखें।)

स्वस्तिक द्वारा जीव-गतियों का निरूपण

स्वस्तिक चिह्न के द्वारा जीव के चार विभाग एवं गतियों का निरूपण किया गया है। निम्नांकित चित्र में यह बात भली भांति समझी जा सकती है—

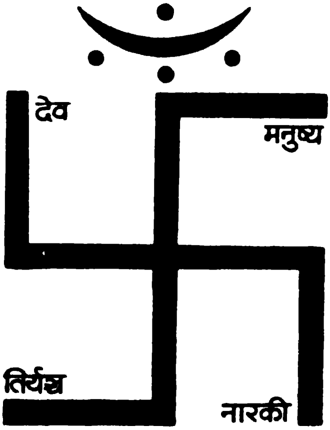

जीव की चार श्रेणियां—नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवता। जिनकी आसुरी वृत्ति है और नरकों में वास करते हैं, वे नारकी हैं; पशु, पक्षी या कीट-पतंगादि के रूप में जन्म लेने वाले तिर्यञ्च हैं; नर देही मनुष्य हैं तथा सूक्ष्म शरीरी देवता हैं।

तीन बिन्दु त्रिरत्न के प्रतीक—'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।'—

—आचार्य उमास्वामी—तत्त्वार्थसूत्र १।१

त्रिरत्न के ऊपर अर्धचन्द्र—जीव के मोक्ष या निर्वाण की कल्पना। जीव स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल लोक सर्वत्र व्याप्त हैं। नारकी जीव धर्म से देवता बन सकता है, त्रिरत्न को धारणकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

स्वस्तिक का चिह्न 'मोहन-जो-दड़ो' के उत्खनन में भी अनेक मुहरों पर प्राप्त हुआ है। विद्वानों का मत है कि पांच हजार वर्ष पूर्व की सिन्धु सभ्यता में स्वस्तिक-पूजा प्रचलित थी।

धर्म-चक्र

त्रिजगद्वल्लभः श्रीमान् भगवानादिपूरुषः ।
प्रचक्रे विजयोद्योगं धर्मचक्राधिनायकाः ॥

—आचार्य जिनसेन, महापुराण २५।२४४

अथ पुण्यैः समाकृष्टो भव्यानां निःस्पृहः प्रभुः ।
देशे-देशे तमश्छेत्तुं व्यचरद् भानुमानिव ॥
यत्रातिशय सम्पन्नो विजहार जिनेश्वरः ।
तत्र रोगग्रहातंक शोकशंकापि दुर्लभा ॥

धर्मशर्माभ्युदय २१।१६६, १७३

'त्रिलोकनाथ धर्मचक्र के अधिनायक भगवान् आदि पुरुष वृषभनाथ तीर्थंङ्कर ने अधर्म पर विजय का, धर्म प्रभावना का उद्योग प्रारम्भ किया । निःस्पृह प्रभु ने सूर्य के समान नाना देशों में व्याप्त अज्ञानान्धकार के निवारणार्थ विचरण किया । अतिशयों से सम्पन्न भगवान् वृषभदेव ने जहां विहार किया, वहां सुख-शांति का प्रसार रहा, क्योंकि प्रभु के मंगलविहार प्रदेश में रोग, ग्रहपीड़ा, भय तथा शोक की आशंका के लिए भी स्थान नहीं था ।'

सम्मद्दंसणतुंबं दुवालसंगारयं जिणिंदाणं ।
वयणेमियं जगे जयइ धम्मचक्कं तवोधारं ॥

—भगवती आराधना, ३।१८४७

—जिनेन्द्र वृषभदेव महावीर का धर्मचक्र जगत् में जयवन्त होकर प्रवर्तित हो रहा है । इस धर्मचक्र का सम्यग्दर्शन रूप मध्य तुंब (केन्द्र) है । आचारांगादिक द्वादश अंग उसके अरे (आरा) हैं । पंच महाव्रत आदि रूप उसके नेमि (धुरा) है । तप रूप उसका आधार है । ऐसा भगवान् जिनेन्द्रदेव का धर्मचक्र अष्टकर्मों को जीतकर परम विजय को प्राप्त होता है ।

जैन-शासन में धर्मचक्र के विविध रूप मिलते हैं । शास्त्रों में धर्मचक्र के इन रूपों का स्पष्ट वर्णन मिलता है । शिवकोटि आचार्य की 'भगवती आराधना' में बारह आरे वाले धर्मचक्र की चर्चा मिलती है । ये बारह आरे जिनवाणी के द्वादशांग के प्रतीक हैं । चौबीस आरे वाला धर्मचक्र चौबीस तीर्थंङ्करों का प्रतीक है । सोलह आरे वाला धर्मचक्र भी प्राचीन प्रतिमाओं के साथ मिलता है । सोलह कारण भावनाओं से तीर्थंङ्कर प्रकृति का बन्ध होता है । महाकवि असग ने वर्द्धमानचरित्र में सूर्य की भांति भास्वर

सहस्र किरणों वाले धर्मचक्र का वर्णन किया है, जो तीर्थङ्करों के आगे-आगे चलता है।* इनके अतिरिक्त प्राचीन कलाकृतियों में जिन बिम्बों के ऊपर तथा चरणों में भी धर्मचक्र मिलते हैं, जिनकी पूजा करते हुए श्रावकगण दिखाए गए हैं। हमने चौबीस तीर्थङ्करों के प्रतीक २४ आरे वाले धर्मचक्र को स्वीकार किया है।

'क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः।
काले काले च वृष्टिं वितरतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम् ॥
दुर्भिक्षं चौर्यमारी क्षणमपि जगतां मास्म भूज्जीवलोके।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रसरतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि ॥'—

(सम्पूर्ण प्रजाओं का कल्याण हो। भूमिपाल, धार्मिक और बलवान रहकर शासन में प्रभावशील हों। यथासमयों में आवश्यकतानुसार मेघ वर्षा करें। समस्त रोगों का नाश होवे। चोरी, महामारी और अकालमृत्यु तथा दुष्काल जगत् में क्षण भर कष्ट देने के लिए भी न हों अर्थात् सर्वदा और सर्वथा जगत् में सुकाल रहे। सर्वजीवों को सुख-शान्ति प्रदान करने वाला 'जिन-शासन' रूपी धर्मचक्र जो उत्तम क्षमादि दशांग पूर्ण है, विश्व में सर्वकाल प्रसारित रहकर अनन्त सुखों को देता रहे।)

'ओं नमो धर्मचक्राधिपतये सौभाग्यमस्तु संसारचक्र शांतिरस्तु ॥'

सम्पूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र सामान्य तपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्यराज्ञः करोतु शान्ति भगवान् जिनेन्द्रः ॥

('हे तीर्थङ्कर वृषभदेव-महावीर जिनेन्द्र, कृपया आप पूजा-अर्चा करने वालों, प्रतिपालकों, यतीन्द्रों, सामान्य तपस्वियों तथा देश, राष्ट्र, नगर, ग्राम के शासकों के लिए नित्य शान्तिकारक हों।)

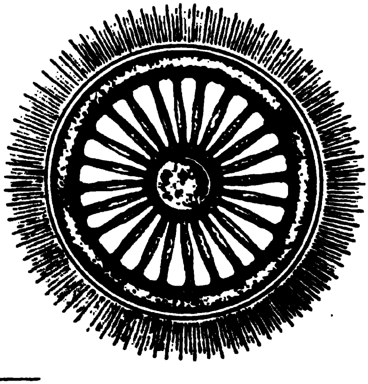

*'अग्रेऽग्रे धर्मचक्र गगने गच्छति चक्रवर्ति चक्रवत्।'—दर्शनप्राभृतम्, संस्कृत टीका १।३५

आदि ऋषभ

जय मंगलं नित्यशुभमंगलम् ।
जय विमलगुणनिलय पुरुदेव ! ते ॥
जिनवृषभ वन्दारुवृन्दवन्दितचरण !
मन्दारकुन्दसितकीर्तिधर ! ते ।
इन्दु कर घृणि कोटि जित विशदतनु किरण !
मन्दरगिरीन्द्र निभवर धीर ! ते ॥

'जैन लोग अपने धर्म के प्रचारक सिद्धों को 'तीर्थङ्कर' कहते हैं, जिनमें आद्य तीर्थङ्कर ऋषभदेव थे। इनकी ऐतिहासिकता के विषय में पुराणों के आधार पर संशय नहीं किया जा सकता। श्रीमद् भागवत में कई अध्याय (स्कन्ध ५, अ० ४–६) ऋषभदेव के वर्णन में लगाये गये हैं। ये मनुवंशी महीपति नाभि तथा महारानी मरुदेवी के पुत्र थे। इनकी विजय-वैजयन्ती अखिल महीमण्डल के ऊपर फहराती थी। इनके सौ पुत्रों में से सबसे ज्येष्ठ थे महाराज भरत, जो भरत के नाम से अपनी अलौकिक आध्यात्मिकता के कारण प्रसिद्ध थे और जिनके नाम से प्रथम अधीश्वर होने के हेतु हमारा देश 'भारतवर्ष' के नाम से विख्यात है।'—

पं० बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, सप्तम संस्करण, पृ० ८८

'जैन परम्परा ऋषभदेव को जैनधर्म का संस्थापक बताती है, जो अनेक सदी पूर्व हो चुके हैं। इस विषय के प्रमाण विद्यमान हैं कि ईस्वी सन् से एक शताब्दी पूर्व लोग प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव की पूजा करते थे। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पार्श्वनाथ तथा वर्धमान के पूर्व भी जैन धर्म विद्यमान था। यजुर्वेद में ऋषभनाथ, अजितनाथ तथा अरिष्टनेमि—इन तीन तीर्थङ्करों का उल्लेख पाया जाता है। भागवत पुराण में 'ऋषभदेव जैनधर्म के संस्थापक थे' इस विचार का समर्थन होता है।'[1]

'सिन्धु घाटी की अनेक मुद्राओं में अंकित न केवल बैठी हुई देवमूर्तियाँ योगमुद्रा में हैं और उस सुदूर अतीत में सिन्धु घाटी में योग मार्ग के प्रचार को सिद्ध करती हैं बल्कि खड्गासन देवमूर्तियाँ भी योग की कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं। और ये कायोत्सर्ग ध्यानमुद्रा विशिष्टतया जैन हैं। आदिपुराण अध्याय १८ में इस कायोत्सर्ग मुद्रा का उल्लेख ऋषभ या वृषभदेव के तपश्चरण के संबन्ध में बहुधा हुआ है। जैन ऋषभ की इस कायोत्सर्ग मुद्रा में खड्गासन प्राचीन मूर्तियाँ ईस्वी सन् के प्रारम्भकाल की मिलती हैं।'[2]

1. डॉ० राधाकृष्णन्, इण्डियन, फिलॉसफी, पृ० २८७
2. Sind Five Thousand Years Ago—R. P. Chanda, Modern Review, Aug., 1932, p. 155.

मोहन-जोदड़ो में दिगम्बर जैन योगी

सील नं. ४३०

प्रजापति वृषभदेव को भागवत पुराण में बहुत ही दिव्य और भव्य महापुरुष के रूप में स्वीकार किया है। वर्णन की एक चरम सीमा भी होती है। ऋषभदेव की भागवत में वर्णित प्रशस्ति यहां प्रस्तुत है—

'इति ह स्म सकल वेद-लोक-देव-ब्राह्मणगवां परमगुरो-
र्भगवत ऋषभाख्यस्य विशुद्धचरितमीहितं पुंसां समस्त
दुश्चरिताभिहरणं परममहामंगलायनम्......।'

—भागवत ५।६।१६

(इस प्रकार सम्पूर्ण वेद, लोक, देव, ब्राह्मण और गौओं के परमगुरु भगवान् ऋषभदेव का विशुद्ध चरित्र कहा गया है जो कि मनुष्यों के समस्त दुश्चरित्र का अभिहरण करने वाला तथा उत्कृष्ट महान् सुमंगलों का स्थान है।)

'आदिमं पृथिवीनाथमादिमं निष्परिग्रहम्।
आदिमं तीर्थनाथं च ऋषभ स्वामिनं स्तुमः॥'

—हेमचन्द्र, सकलार्हत्स्तोत्र, १।३

(पृथिवी के प्रथम स्वामी, प्रथम परिग्रहत्यागी और प्रथम तीर्थङ्कर श्री वृषभदेव स्वामी की हम स्तुति करते हैं।)

भरत का भारत

जयति भरतः श्रीमानिक्ष्वाकुवंशशिखामणि।

—सुभद्रा नाटक, ३।२५

'यह सुविदित है कि जैन धर्म की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। भगवान् महावीर तो अन्तिम तीर्थङ्कर थे। भगवान् महावीर से पूर्व २३ तीर्थङ्कर और हो चुके थे। उन्हीं में भगवान् ऋषभदेव प्रथम तीर्थङ्कर थे, जिसके कारण उन्हें आदिनाथ कहा जाता है। जैन कला में उनका अंकन घोर तपश्चर्या की मुद्रा में मिलता है। ऋषभनाथ के चरित का उल्लेख श्रीमद्भागवत में भी विस्तार से आता है और यह सोचने पर बाध्य होना पड़ता है कि इसका कारण क्या रहा होगा? भागवत में ही इस बात का उल्लेख है कि महायोगी भरत ऋषभदेव के शतपुत्रों में ज्येष्ठ थे और उन्हीं से यह देश भारतवर्ष कहलाया।[1] इस विषय में यह बात स्पष्टता से जान लेनी चाहिए कि पुराणों में भारतवर्ष के नाम का संबंध नाभि के पौत्र और ऋषभ के पुत्र भरत से है (वायु पुराण ३३।५२)।[2]

भागवत में भरत के गुणों की प्रशस्ति करते हुए लिखा है—'राजर्षि भरत के पवित्र गुण और कर्मों की भक्तजन भी प्रशंसा करते है। उनका यह चरित्र बड़ा कल्याणकारी, आयु और धन की वृद्धि करने वाला, लोक में सुयश बढ़ाने वाला और अन्त में स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला है। जो पुरुष इसे सुनता या सुनाता है और इसका अभिनन्दन करता है, उसकी सम्पूर्ण कामनाएं स्वयं पूर्ण हो जाती है, दूसरों से उसे कुछ भी नहीं मांगना पड़ता।'[3]

इक्ष्वाकुवंश के मुकुटमणि भरत चक्रवर्ती ने प्रजाओं का बहुत अच्छी तरह भरण-पोषण किया, इसलिए वे भरत कहलाए।

१—येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीत्।
येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति ॥—श्रीमद्भागवत ५।४।९

२—मार्कण्डेय पुराण : एक अध्ययन—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

३—भागवत ५।१५।१६

ऋषभदेव से महावीर

'धर्मतीर्थकरेभ्योऽस्तु स्याद्वादिभ्यो नमो नमः।
ऋषभादिमहावीरान्तेभ्यः स्वात्मोपलब्धये ॥'

—आचार्य [illegible]

—'धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करने वाले, स्याद्वाद के व्याख्याता ऋषभदेव से लेकर महावीर पर्यन्त हुए। चतुर्विंशति जिनेन्द्रों को स्वात्मा की प्राप्ति के लिए बारम्बार नमो नम।'

प्रथम तीर्थंङ्कर ऋषभदेव और अन्तिम तीर्थङ्कर वर्धमान-महावीर को एक पाषाण में युगल मूर्ति के रूप में उत्कीर्ण कर शिल्पी ने, तथा उपर्युक्त संस्कृत श्लोक में इन दोनों तीर्थङ्करों की एक साथ भक्तिपूर्ण स्तुति कर कवि ने तीर्थङ्करों की अविच्छिन्न परम्परा की शृंखला का ऐतिहासिक क्रम से दिग्दर्शन कराया है।

चतुर्विंशति तीर्थङ्कर शुभ नामावलि

१.	आदिनाथ (ऋषभदेव)	२.	अजितनाथ
३.	संभवनाथ	४.	अभिनन्दननाथ
५.	सुमतिनाथ	६.	पद्मप्रभनाथ
७.	सुपार्श्वनाथ	८.	चन्द्रनाथ (सोमनाथ)
९.	पुष्पदन्तनाथ	१०.	शीतलनाथ
११.	श्रेयांसनाथ	१२.	वासुपूज्यनाथ
१३.	विमलनाथ	१४.	अनन्तनाथ
१५.	धर्मनाथ	१६.	शान्तिनाथ
१७.	कुन्थुनाथ	१८.	अरहनाथ
१९.	मल्लिनाथ	२०.	मुनिसुव्रतनाथ
२१.	नमिनाथ	२२.	नेमिनाथ
२३.	पार्श्वनाथ	२४.	वीरनाथ (वर्धमान)

२४ तीर्थङ्करों की स्तुति

उसहमजियं च वन्दे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥१॥
सुविहिं च पुप्फयंतं, सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवं धम्मं संति च वंदामि ॥२॥
कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदाम्यरिट्ठणेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ॥३॥

अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः
समं भान्ति ध्रौव्यव्ययजनिलसन्तोऽन्तरहिताः।
जगत्साक्षी मार्गं प्रकटनपरो भानुरिव यो
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥१॥

(जिनके दर्पण सदृश चैतन्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-विधर्नों में अन्तर्गहित चित् और अचित् (चेतन एवं जड़) भाव एक साथ झिलमिल हो रहे हैं और सूर्य के समान जो लोकसाक्षी तथा (सम्यक् चारित्र) मार्ग को प्रकट करने में तत्पर हैं, वह भगवान् महावीर स्वामी मेरे नयनपथगामी (नेत्रों के समक्ष) हों।)

मध्यमा पावा के हस्तिपाल और निर्वाण भारती

(निर्मल आत्मा ही पावा सरोवर)

श्वेताम्बर ग्रन्थ 'कल्पसूत्र' तथा दिगम्बर ग्रन्थ 'णिसीहिया दण्डग' के अनुसार तीर्थङ्कर महावीर का निर्वाण मध्यमा पावा* में हुआ। उस समय मल्ल गणराज्य के प्रधान हस्तिपाल आदि ने परिनिर्वाणोत्सव के उपलक्ष में दीपमालिकोत्सव मनाया। प्राकृत भाषा में रचित 'कल्पसूत्र' और णिसीहिया दण्डग' के उद्धरणों के साथ हमने यहाँ इस प्रसंग का संकेत किया है।

'णिसीहिया दण्डग' का दिगम्बर त्यागियों द्वारा नित्यपाठ किया जाता है। कमलयुक्त पावा सरोवर धार्मिक तीर्थक्षेत्र है परन्तु निश्चय से प्रत्येक व्यक्ति का निर्मल आत्मा ही पावा सरोवर होना चाहिए, तभी हमारा तीर्थङ्कर महावीर के २५००वें परिनिर्वाण महा महोत्सव का आयोजन सफल समझा जावेगा।

'तेणं कालेणं तेणं समएणं ..... बावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता, खीणे वेयणिज्जाउय नामगोत्ते, इमीसे ओसप्पिणीए दूसमसुसमाए समाए बहुवी इक्कंताए, तिहिं वासेहिं अद्धनवमेहिं य मासेहिं सेसएहिं पावाए मज्झिमाए हत्थिपालगस्स रज्जो रज्जु-यसभाए ...... ।'

—कल्पसूत्र सू. १४७

(उस काल में और उस समय में ७२ वर्ष की पूर्ण आयु का योग करके तीर्थङ्कर महावीर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। उनके वेदनीय आयु नाम और गोत्र कर्म नष्ट होगये। इस अवसर्पिणी का दुखमा-सुखमा नाम का आरा व्यतीत होते-होते जब उसमें तीन वर्ष साढ़े आठ माह शेष रह गए, तब मध्यमा पावानगर में, जहाँ हस्तिपाल नामक राजा की रज्जुग सभा थी, उस राज्यसभाभवन के निकट पद्मवन उद्यान में परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। उनका परिनिर्वाण महोत्सव प्रोषधोपवास करके गण-राजाओं द्वारा मनाया गया।)

'जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे काल गए जाव सव्व दुक्खप्पहीणे, तं रयणिं च णं नवमल्लई नव लिच्छई कासी—कोसलगा अट्ठारस—वि गणरायाणो अमा-वासाए पाराभोयं पोसहोपवासं पट्ठवइंसु।'

—कल्पसूत्र सू. १३२

(जिस रात्रि में तीर्थङ्कर भगवान् महावीर का परिनिर्वाण हुआ, यावत् वे सर्व दुःखों से रहित हुए, उस रात्रि में नौ मल्ल देश के नौ लिच्छवि राष्ट्र के, काशी-कोशल जनपद के १८ गणराजाओं ने भी कार्तिक अमावस्या में प्रोषधोपवास करके पारणा की। इस प्रकार ३६ गणराजाओं ने वीर परिनिर्वाणमहोत्सव मनाया।)

---

*पावायन्त मल्लानं नगरं।—सुत्तपिटक, दीघनिकाय ३।१०।१

महापरिणिव्वाण सुत्त
(णिसीहिया-दण्डग)

णमो जिणाणं ३, णमो णिसीहियाओ ३, णमोत्थुदे ३, अरहंत ! सिद्ध ! बुद्ध ! णीरय ! णिम्मल ! सममण ! सुभमण ! सुसमत्थ ! समजोग ! समभाव । सल्लघट्टाणं । सल्लघत्ताणं ! णिब्भय । णिराय । णिद्दोस । णिम्मोह ! णिम्मम ! णिस्संग । णिस्सल । माणमायमोसमद्दण । तवप्पहावण । गुणरयण । सीलसायर । अणंत ! अप्पमेय । णमो भयवदो महदि महावीर वड्ढमाण बुद्धरिसिणो चेदि णमोत्थु दे णमोत्थुदे णमोत्थु दे ॥१॥

(जिनेन्द्रों को नमस्कार हो, जिनेन्द्रों को नमस्कार हो, जिनेन्द्रों को नमस्कार हो। निषीधिकाओं को नमस्कार हो, निषीधिकाओं को नमस्कार हो, निषीधिकाओं को नमस्कार हो। हे अर्हन्त ! हे सिद्ध ! हे बुद्ध ! हे कर्ममलरहित ! हे निर्मल ! हे समसन, हे शुभमन, हे सुसमर्थ, हे समयोग, हे समभाव, हे शल्य विनाशक, हे शल्यघातक, हे निर्भय, हे नीराग, हे निर्दोष, हे निर्मोह, हे निर्मम, हे निःसंग, हे निशल्य, हे मानमाया-मृषामर्दक, हे तपः प्रभावन, हे गुणरत्न, हे सीलसागर, हे अनन्त, हे अप्रमेय, हे भगवान् महान् महावीर बुद्धर्षि—बुद्धों के ऋषि ! आपको नमस्कार हो—नमोऽस्तु हो, नमोस्तु हो, नमोस्तु हो !!)

मज्झ मंगलं अरहंता य सिद्धा य बुद्धा य जिणा य केवलिणो ओहिणाणिणो मणपज्जयणाणिणो चउदसपुव्वं गामिणो सुदसमिदि समिद्धा य, तवो य बारसविहो तवसी, गुणा य गुणवंतो य महारिसी तित्थं तित्थकरा य, पवयणं पवयणी य, णाणं णाणीय, दंसणं दंसणी य, संजमो संजदाय, विणओ विणीदा य, बंभचेरवासो बंभचारी य, गुत्तीओ चेव गुत्तिमंतो य, मुत्तीओ चेव मुत्तिमंतो य, समिदीओ चेव समिदिमंतो य, ससमय-परसमयविदु, खंति खवगा य, खीणमोहा य खीणवंतो य, बोहियबुद्धा य बुद्धिमंतो य, चेईयरुक्खाय चेईयाणि एदे सव्वे मज्झ मंगलं होंतु ॥२॥

(अर्हन्त, सिद्ध, बुद्ध, जिन, केवली, अवधिज्ञानी, मनःपर्यायविज्ञानी, चतुर्दश-पूर्वंगामी, श्रुत समिति समृद्ध, बारहविधतप तपस्वी गुण गुणों वाले महर्षि तीर्थ, तीर्थङ्कर, प्रवचन, प्रवचनवाले, ज्ञान-ज्ञानी, दर्शन-दर्शनी, संयम-संयमी, विनय विनयी, ब्रह्मचर्यवासी ब्रह्मचारी, गुप्तियां गुप्तियों वाले, मुक्ती मुक्तीवाले, समितियां समितिवाले, स्वसमय और परसमयवेत्ता, क्षीति क्षांतिधारी क्षपक, क्षीणमोह और क्षीणमोहवाले, बोधितबुद्ध, बुद्धिशाली, चैत्यरुख चैत्य ये मेरे लिए मंगलशाली या कारी हों।)

'उड्ढमहतिरिय लोए सिद्धायदणाणि णमंसामि। सिद्धिणिसीहियाओ अट्ठावयपव्वए सम्मेदे, उज्जंते, चंपाए, पावाए मज्झिमाए हत्थिवालिय सहाए णमंसामि। जाओ अण्णाओ का वि णिसीहियाओ जीवलोयम्मि ईसिपब्भार तलगयाणं सिद्धाणं बुद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं णीरयाणं णिम्मलाणं गुरु—आयरिय-उवज्झायाणं पव्वतित्थेर कुलयराणं णमंसामि। चाउवण्णाय समणसंघो य भरहे रावएसु दससु पंचसु महाविदेहेसु मज्झ मंगलं होज्ज। जे लोए संति साहवो संजदा तवसीओ एदे मज्झमंगलं पवित्तं। एदे करेइ भावदो विसुद्धो सिरसा अहिवंदिऊण सिद्धेकाऊण मंजलिमत्थयम्मि पडिलेहिय अट्ठकम्मारिओ तिविहं तियरण सुद्धो ॥३॥

(मैं ऊर्ध्वलोक के, अधोलोक के और तिर्यग्लोक—मध्यलोक के—सिद्धायतनों को नमस्कार करता हूं। अष्टापद पर्वत, सम्मेदशिखर, उर्जयन्त, चंपापुर एवं मध्यमा पावानगर के हस्तिपाल की सभामण्डप में सिद्ध निषीधिका को मैं नमस्कार करता हूं। तथा और भी कोई सिद्ध निषीधिकाएं, जीवलोक में ईषत्प्राग्भार पृथिवी में सिद्धों की, बुद्धों की, कर्मचक्र से मुक्तों की, नीरागों की, निर्मलों की, गुरु आचार्य उपाध्यायों की एवं कुलकरों की हों, उन्हें मैं नमस्कार करता हूं। चातुर्वर्ण (यति, मुनि, ऋषि और अनगार) श्रमणसंघ जो भी पांच भरत, पांच ऐरावत, एवं पांच महाविदेहों में हो गए, वे मुझे मंगलकारी हों। लोक में जो भी साधु हों, संयत हों, तपस्वी हों वे सब मुझे पवित्र करें और मंगलप्रद हों। यह मैं भाव से विशुद्ध होकर, मस्तक झुकाकर इन्हें नमस्कार करता हूं, सिद्धों को मस्तक पर हस्ताञ्जलि करके मन वचन काय से शुद्ध होकर अष्ट कर्मों का प्रतिलेखन करता हूं।)

चैत्य-वन्दना-स्तोत्र

[चैत्यवन्दना चित्तोपयोगेनानुष्ठानस्य साफल्यत्वात्]

सद्भक्त्या देवलोके रवि शशि भवने व्यन्तराणां निकाये,
नक्षत्राणां निवासे ग्रहगण पटले तारकाणां विमाने।
पाताले पन्नगेन्द्रे स्फुटमणि किरणैर्ध्वस्तसान्द्रान्धकारे,
श्रीमत्तीर्थङ्कराणां प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वन्दे ॥१॥

वैताढ्ये मेरुशृङ्गे रुचक गिरिवरे कुण्डले हस्तिदन्ते,
वक्खारे कूट नन्दीश्वर कनकगिरौ नैषधे नीलवन्ते।
चैत्रे शैले विचित्रे यमक गिरिवरे चक्रवाले हिमाद्रौ,
श्रीमत्तीर्थङ्कराणां प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वन्दे ॥२॥

श्रीशैले विन्ध्यशृङ्गे विमलगिरिवरे ह्यर्बुदे पावके वा,
सम्मेते तारके वा कुलगिरिशिखरेऽष्टापदे स्वर्ण शैले।
सह्याद्रौ वैजयन्ते विमलगिरिवरे गुर्जरे रोहणाद्रौ,
श्रीमत्तीर्थङ्कराणां प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वन्दे ॥३॥

आघाटे मेदपाटे क्षिति तट मुकुटे चित्रकूटे त्रिकूटे,
लाटे नाटे च घाटे विटपिघनतटे हेमकूटे विराटे।
कर्णाटे हेमकूटे विकट तरकटे चक्र कूटे च भोटे,
श्रीमत्तीर्थङ्कराणां प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वन्दे ॥४॥

श्रीमाले मालवे वा मलयिनि निषधे मेखले पिच्छले वा,
नेपाले नाहले वा कुवलय तिलके सिंहले केरले वा।
डाहाले कोशले वा विगलित सलिले जङ्गले वाढमाले,
श्रीमत्तीर्थङ्कराणां प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वन्दे ॥५॥

अङ्गे बङ्गे कलिङ्गे सुगत जनपदे सत्प्रयागे तिलङ्गे,
गौडे चौडे मुरण्डे वरतर द्रविडे उद्रियाणे च पौण्ड्रे।

आङ्गे माङ्गे पुलिन्द्रे द्रविड कवलये कान्यकुब्जे सुराष्टे,
श्रीमत्तीर्थङ्कराणां प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वन्दे ॥६॥

चन्द्रायां चन्द्रमुख्यां गजपुर मथुरा पत्तने चोज्जयिन्यां,
कोशाम्ब्यां कोशलायां कनकपुरवरे देवगिर्यां च काश्याम् ।
नासिक्ये राजगेहे दशपुर नगरे भद्दिले ताम्रलिप्त्यां,
श्रीमत्तीर्थङ्कराणां प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वन्दे ॥७॥

स्वर्गे मर्त्येऽन्तरिक्षे गिरि शिखर ह्रदे स्वर्णदीनीरतीरे,
शैलाग्रे नागलोके जलनिधि पुलिनेभूरुहाणां निकुञ्जे ।
ग्रामेऽरण्ये वने वा स्थलजल विषमे दुर्गमध्ये त्रिसन्ध्यं,
श्रीमत्तीर्थङ्कराणां प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वन्दे ॥८॥

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रुचक नगवरे शाल्मलौ जम्बुवृक्षे,
चोज्जन्ये चैत्यनन्देरतिकर रुचके कौण्डले मानुषाङ्के ।
इक्षुकारे जिनाद्रौ च दधिमुखगिरौ व्यन्तरे स्वर्गलोके,
ज्योतिर्लोके भवन्ति त्रिभुवन वलये यानि चैत्यालयानि ॥९॥

इत्थं श्रीजैन चैत्य स्तवनमनुदिनं ये पठन्ति प्रवीणाः,
प्रोद्यत्कल्याणहेतु कलिमलहरणं भक्तिभाजस्त्रिसन्ध्यम् ।
तेषां श्रीतीर्थयात्रा फलमतुलमलं जायते मानवानां,
कार्याणां सिद्धिरुच्चैः प्रमुदितमनसां चित्तमानन्दकारि ॥१०॥